आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 2/अंक 2/जून 2022

Received: 10/06/2022; Accepted: 10/06/2022; Published: 24/06/2022

राजी सेठ के उपन्यासों में नारीवादी चिंतन

- लक्ष्मी. एच.एस

शोधार्थी,

हिंदी अध्ययन विभाग, मानसगंगोत्री,

मैसूर विश्वविद्यानिलय, मैसूरु

लक्ष्मी. एच.एस, राजी सेठ के उपन्यासों में नारीवादी चिंतन,आखर हिंदी पत्रिका,खंड 2/अंक 2/जून 2022,(99-103)

अठारहवीं सदी के अंत तथा उन्नीसवीं सदी के आरंभ में अमेरिका और यूरोप में नारीवादी आंदोलन की शुरुआत हुई जिसका 'फेमिनिस्ट मूवमेंट' के नाम से विकास हुआ। इस आंदोलन का ध्येय था मानवाधिकार के तहत स्त्री को प्रत्येक कार्यक्षेत्र में समान अवसर प्रदान कराना तथा अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करना। सीमेन द बोआर की पुस्तक 'द सेकेंड सेक्स' पुस्तक ने इस आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसमें नारी की ऐतिहासिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक स्थितियों का परिचय मिलता है। इस पुस्तक में उन्होंने आधुनिक नारी की सामाजिक भूमिका पर भी खूब चर्चा की है। उस समय सीमेन का मत था कि गरीब और निम्न जाति की तरह ही औरत भी गुलामी की ज़ंजीरों में बंधी हुई है और उससे मुक्ति पाने में 'विमेन लिव मुवमेंट' ने अहम भूमिका निभाई।

पाश्चात्य देशों की तुलना में भारतीय नारी की स्थिति अधिक दयनीय थी। बाल-विवाह, सति-प्रथा, पति को भगवान मानना और पितृसत्तात्मक विचारधारा अपने जडें मज़बूत कर चुकी थीं। अचरज की बात यह रही कि ऐसी समस्याओं से जूझने के बावजूद स्त्री ने चुप्पी साध रखी थी या यूँ कहें कि उसके हाथ और पैरों की तरह उसकी ज़ुबान पर भी ताला लगा हुआ था जिसे तोडने का प्रयास भी पुरुष समाज ने ही किया। जिनमें राजा राममोहन राय, महादेव गोविंद रानडे और स्वामी दयानंद सरस्वती आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने न सिर्फ सति-प्रथा को खत्म किया बल्कि विधवा-विवाह को मान्यता दिलाई। नारी को सशक्त बनाने के लिए उसकी शिक्षा पर ज़ोर दिया, जिसने भविष्य में बहुत अच्छे नतीजे भी दिए।

सुमन कृष्णकांत जी लिखती हैं- "भारत में नारी को जो अधिकार मिले वे किसी विद्रोह के फलस्वरूप नहीं मिले और न ही पुरुषों के विरुद्ध कोई मोर्चा खोलकर। ये अधिकार डेढ सौ वर्षों की सामाजिक क्रांति के परिणामस्वरूप थे। देश के स्वाधीनता संग्राम में पुरुषों के कंधे से मिलाकर जूझने के

परिणामस्वरूप थे। मात्र भावुकता या स्त्रियों के प्रति किसी प्रकार की संवेदना के फलस्वरूप भी ये अधिकार महिलाओं को नहीं दिये गए, बल्कि भारतीय नारी ने अपने योग्यता और कार्य-कुशलता की स्वीकृति के आधार पर ही इन्हें प्राप्त किया।"[1] लेकिन यब बात ध्यान देने योग्य है कि नारी को इस प्रकार के आंदोलन के लिए पुरुष वर्ग ने ही सहारा दिया था। और इसका उद्देश्य था औरत को औरत समझा जाए, उसे किसी बंधुआ मज़दूर की तरह न रखा जाए, उसे समान अधिकार व समान अवसर प्रदान किए जाएं जो उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। इस विषय में नासिरा शर्मा जी का कथन है- "सबसे पहली बात जो विश्वस्तर पर समझ में आती है, वह है औरत को इंसान समझा जाए, उसको बराबरी से जीने का अधिकार दिया जाए। हर राष्ट्र, हर समाज में रहनेवाली नारी की यह इच्छा है, जो उसके साहित्य में झलकती है।"[2] साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि पुरुष नारीवादी अवश्य हो सकता है लेकिन उसके द्वारा लिखे गए साहित्य को नारीवादी लेखन के रूप में नहीं स्वीकारा गया।

समय के साथ-साथ यही नारीवादी आंदोलन साहित्य लेखन में भी देखा गया। जिसका उद्देश्य भी स्त्री अस्मिता, महत्व और रूढ़िवादी परंपराओं से स्त्री को बचाना ही था। इस प्रकार के लेखन में महिलाएं आगे रही हैं जिसमें नासिरा शर्मा, सूर्यबाला, चंद्रकांता और राजी सेठ जैसी महिला लेखिकाओं का बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहा है, जिन्होंने अपने लेखन के माध्यम से न सिर्फ महिला लेखन को समृद्ध किया बल्कि नारीवाद को भी अधिक स्पष्टता से प्रस्तावित किया।

राजी सेठ का कथा साहित्य नारीवादी लेखन की श्रेणी में न सही किंतु नारीवादी चेतना में अवश्य मुखरित होता है। उनकी अधिकतर रचनाएं कहीं न कहीं नारी की मानसिकता, उसकी चिंताएँ, कुंठाएं और जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण को दर्शाती है। उनके उपन्यास और कहानियों की अधिकतर स्त्रियाँ रूढिग्रस्त परंपराओं से मुक्त हैं। वे सब स्वयं के बारे में पहले विचार करने वाली आधुनिक स्त्रियाँ हैं। लेकिन यहाँ यह बात भी गौरतलब है कि वह पुरुष विरोधी नहीं हैं बल्कि पुरुषवाद या पितृसत्तात्मक विचारों की विरोधी हैं, जिसका उदाहरण राजी सेठ अपने उपन्यास 'निष्कवच' की मार्था के माध्यम से देती हैं। मार्था से जब विशाल अबार्शन करवाने का कारण पूछता है तो वह कहती है कि वह अपनी देह की खुद मालकिन है, वह इस के साथ जो चाहे कर सकती है, यह उसका मौलिक अधिकार है लेकिन असल कारण बताते हुए वह कहती है -"मैं अमिनोसेण्टेसिस के लिए गई थी। पता लगा, लड़का है। तब तो और भी आसान हो गया मेरे लिए फैसला। भला मैं क्यों उसकी नस्ल को बढाना चाहूँगी- दीज ब्रूटस। इन्होंने सदियों से हमें कुचलकर रखा है।"[3] अतः वह पुरुषों द्वारा स्त्री का शोषण तथा दमन देख कर तंग आ गई है और नहीं चाहती कि वह भी ऐसे ही प्राणी को जन्म दे। उसका यह फैसला पितृसत्तात्मक सोच का नहीं बल्कि पुरुषविरोधी मानसिकता का नतीजा लगता है।

राजी सेठ के कथा साहित्य पर दृष्टिगत अध्ययन करते हुए डॉ. कश्मीरी लाल जी लिखते हैं- "पुरुष भी नारीवादी हो सकता है यद्यपि नारी नहीं बन सकता, जिस प्रकार कोई गोरा व्यक्ति वेर्णभेद के विरुद्ध लड सकता है लेकिन किंतु काला नहीं हो सकता। यह अलग बात है कि पुरुष प्रायः नारीवादी चिंतन में पुरुष की ओर से अधिक प्रतिबद्ध रह सकता है। नारी को अपने नारी होने का अनुभव जन्म लेते ही नहीं हो जाता। उसे उसकी संस्कृति ही कराती है। नारीवाद की धारणा है कि यद्यपि नारी को अपने नारीपन का बोध होता है, यद्यपि यह अनिवार्य नहीं है कि वह सदा-सदा के लिए नारी बनकर अपनी स्त्रेण प्रवृत्तियों तक सीमित हो जाये। उधर यह भी घातक होगा, यदि स्त्री अपनी नारीवादी धारणा एवं सांस्कृतिक व्यवस्था के वशीभूत होकर पितृसत्तात्मक व्यवस्था की तरह देने के लिए पुरुषों के मोर्चे के विरोध में खडी हो जाए।"[4] अतः उनका मत है कि राजी सेठ जी भी यह मानती हैं कि नारीवादी लेखन पुरुषविरोधी न माना जाए बल्कि उस मानसिकता का विरोधी माना जाए।

नारीवादी लेखन का सबसे अहम पहलू है नारी चेतना, जिसका उदाहरण राजी सेठ का उपन्यास 'तत्-सम' है जिस में उन्होंने वसुधा के माध्यम से नारी के कई रूप और उन रूपों में उसके चिंतन को दर्शाया है। जिसमें अपनी अस्मिता के प्रति सजगता, रूढी-परंपरावाद से सुधारवाद की ओर बढती हुई आधुनिक नारी का रूप दिखाई देता है। अतः यह कहना सटीक होगा कि 'वसुधा' नारीवादी चेतना की साकार मूर्ती है क्योंकि वह बिना आक्रामक या विद्रोही होते हुए भी नारी आंदोलन का बिगुल बजाए, नारी को सशक्त होने का आभास करवाती है, वह बताती है कि पति की मृत्यु जीवन के एक अध्याय का खत्म होना है न कि जीवन का।

'तत्-सम' उपन्यास में राजी जी ने न सिर्फ विधवा स्त्री से जुडी समस्या पर विचार किया है बल्कि रूढिवादी समाज के कारण नारी के मन में उठनेवाले कई सवालों को भी ध्वनि प्रदान की है। भारतीय समाज में जहाँ परंपरा के नाम पर विधवा को श्रृन्गार की अनुमति नहीं दी जाती तो वे प्रश्न करती हैं, क्या यह नारी का, उसकी अस्मिता का अपमान नहीं है? वे लिखती हैं- "रंग मात्र एक ही है- वर्णहीन। शुभ्र। सूने सपाट माथे को सौंदर्यदीप्त कर सकनेवाले टीके का कोई अर्थ नहीं। न ही नीख एकांत को चूडियों की घरेलू खनक से हर लेने की अपनी कोई महत्ता। वह सब कुछ तो एक प्रतीक मात्र था। एक पराई मिल्कियत। मालिक के चल बसने पर लवादे की तरह उतार फेंकी गयी। अपनी 'कुछ नहीं' हैसियत को और नंगा कर दिया गया।"[5] अतः नारी किसी की गुलाम नहीं है न कि कोई वस्तु जिस पर कोई मालिकाना अधिकार जमा सकता है।

संस्कारों तथा रूढि-परंपराओं से जकडी हुई महिलाओं का भी ज़िक्र राजी ने 'तत्-सम' में किया है। वे कुछ विधवा स्त्रियों का परिचय कराते हुए कहती है- "एक कोई ताई थीं जिन्हें पति की चिता से खींचकर लाना पडा था और महीनों कमरे में बंद रखना पडा था। बहुत दूर की एक मौसी थी, वैधव्य में सन्यासिनी

होकर स्वर्गाश्रम में रह रही थी। एक माँ की सहेली थी, उन्होंने पच्चीस वर्ष से नमक नहीं खाया था। अपने पति की मृत्यु के बाद।"[6] यहाँ प्रश्न अवश्य उठता है कि पुरुषों पर ऐसी कोई परंपरा क्यों नहीं लादी गई? क्या केवल इसलिए कि वह पुरुष है? एक स्त्री का स्वामी और स्त्री एक दासी मात्र? यहाँ वसुधा की भाभी का कथन महत्वपूर्ण लगता है जब वह अपनी सास से वसुधा के पुनर्विवाह के विरोध पर आक्रोश जताते हुए कहती है- "औरत हूँ तभी तो..... ज़रा न्याय तो देखो अपने भगवान का। भकुआ आदमी अकेला रह जाए तो तूफान खड़ा हो जाए और औरत के लिए पत्ता भी न हिले जबकि वह हर तरह से ज़्यादा मजबूर है।"[7]

असल में 'तत्-सम' की वसुधा 'निष्कवच' की नीरा या मार्था की तरह प्रगतिशील नहीं है, वसुधा एक ऐसा पात्र है जो बताती है कि नारी को प्रगतिशील होने के लिए संस्कारमुक्त या विद्रोही होने की आवश्यकता नहीं है। वह अपनी प्राकृतिक भूमिका में रह कर भी कई परिवर्तन कर सकती है, वह आगे बढ सकती है, 'आधुनिक' हो सकती है। केवल वसुधा ही नहीं बल्कि उसकी भाभी भी आधुनिक तथा सुधारवादी है क्योंकि वह वसुधा की दोबारा शादी करने के पक्ष में है और शरत भैया से साथ इस पक्ष में उनकी अम्मा के विरोध में खडी होकर कहती है- "भगवान की मर्ज़ी में अपनी मर्ज़ी जोड कर तुम उसकी ज़िंदगी को क्यों हराम कर रही हो अम्मा... ज़रा सोचकर तो देखो, किसी की औरत मर जाए तो मसान में ही रिश्ते आने लग जाते हैं मरदों के और औरतें.....।"[8] यानी औरत पर केवल एहसान किया जाता है और वह भी केवल उसके शरीर को छू सकने की लालसा में।

यही गंभीर विषय राजी जी ने 'तत्-सम' में उठाया है। वह यह है कि विधवा या परित्यक्ता नारी को पुरुष समाज एक मौके की तरह देखता है। उसे लगता है कि अब वह आज़ाद है तो क्यों न उसे अपनी ओर आकर्षित किया जाये। सांत्वना या सहारा देने के बहाने क्यों न उस पर हाथ साफ कर लिया जाए। 'तत्-सम' उपन्यास के पाठक, मि. इंटेलेक्चुअल ऐसे ही पात्र हैं जो वसुधा को अपनी ओर आकर्षित करने का कोई मौका नहीं छोड़ते लेकिन वसुधा जो कि पढी-लिखी तथा समझदार औरत है, वह उनकी नज़र को अच्छी तरह समझ जाती है और उनको अपनी सीमा कभी पार करने का मौका नहीं देती।

'तत्-सम' उपन्यास की वसुधा और 'निष्कवच' की नीरा में बहुत बड़ा अंतर है, सोच और विचारधारा का। दोनों पढी-लिखी, आधुनिकता से लैस लेकिन दोनों की सोच एक दूसरे से भिन्न। नीरा एक विद्रोही प्रवृत्ती की स्त्री है, वह जानती है उसके लिए क्या फायदेमंद है और वह उसी प्रकार से फैसले भी लेती है। वह बासु को केवल अपनी ज़रूरत पूरी करने के लिए इस्तेमाल करती है लेकिन आर्थिक रूप से सुरक्षित होने के लिए रमण से विवाह कर लेती है।

राजी सेठ जी ने स्त्री की अलग-अलग छवियों को बखूबी ढंग से प्रस्तुत किया है। 'निष्कवच' उपन्यास में नीरा जहाँ पुरुष के साथ-साथ आर्थिक सुरक्षा चाहती है वहीं मार्था उससे पूर्णतया भिन्न है। वह समझती है कि पुरुष सदियों से केवल स्त्री शोषण ही करता आया है तो अपनी ज़रूरतें पूरी करने के लिए

उसका उपयोग किया जाना कोई गुनाह नहीं है। वह समझती है कि मर्द का औरत के शरीर पर कोई अधिकार नहीं होता। इसी लिए अबार्शन कराने के लिए भी वह इसी बात का सहारा लेती है।

निष्कर्षतः बताया जाए तो राजी सेठ जी खुद को नारी वादी लेखिका नहीं मानती लेकिन उनके लेखन से यह स्पष्ट होता है कि वे नारी मनोविज्ञान को बहुत अच्छी तरह समझ गई हैं और उसी को अपने कथानक और पात्रों के माध्यम से पाठकों के सम्मुझ रखती हैं। उनके पात्र अपने संवादों के माध्यम से, अपनी-अपनी विचार एवं चिंतनशीलता को प्रदर्शित करते हैं। वे समाज में घटित होने वाली रूढीवादी परंपराओं को एक समस्या भी समझते हैं खास कर वह परंपराएं जो नारी को नारी नहीं बल्कि किसी पशु की समानता देती हैं, उसके अधिकारों से उसे वंचित रखती हैं।

संदर्भ ग्रंथ:

[1] इक्कीसवीं सदी की ओर, सं. सुमन कृष्णकांत, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2006, पृ.25

[2] पूर्ववत, नासिरा शर्मा, पृ.43

[3] निष्कवच, राजी सेठ, भारतीय ज्ञानपीठ, 2005, पृ.92

[4] राजी सेठ: कथा सृष्टि एवं दृष्टि, डॉ. कश्मीरीलाल, नेशनल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2005, पृ.14

[5] तत्-सम, राजी सेठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ.22

[6] तत्-सम, राजी सेठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ.19

[7] तत्-सम, राजी सेठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ.29

[8] तत्-सम, राजी सेठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ.29

****